

इज्तेहाद

किसी मामले में दीन व शरीअत के निर्देश को समझने की कोशिश करने को 'इज्तेहाद' कहते हैं। यह कोशिश तब की जाती है जब किसी मामले में कुरआन की आयतों या पैगम्बर सल्ल. की सही हदीसों से कोई सीधी जानकारी न मिलती हो और कुरआन व सुन्नत के समस्त निर्देशों को सामने रख कर अक़ल से यह फ़ैसला करना पड़े कि इस मामले में शरीअत का क्या नियम मुम्किन हो सकता है। इस लेख में इसी विषय पर चर्चा की गयी है।

'इज्तेहाद' की शब्दावली एक हदीस से निकली है। हदीस के इमामों (माहिरो) के नज़दीक यह रिवायत 'मुन्क़तअ' है यानी इस हदीस को बयान करने वालों की श्रंखला में कोई कड़ी या तो गुम है या क्रम अनुसार इसका सिलसिला मूल स्रोत (पैगम्बर सल्ल.) तक नहीं पहुंचता। लेकिन इसी हदीस का एक जुमला इस्लामी फ़िक्ह (शरीअत की नियमावली का बोध) में इस्तेमाल होने वाली इस शब्दावली का स्रोत बन गया है। बयान किया जाता है कि अल्लाह के रसूल सल्ल. ने सहाबी मआज़ बिन जबल को यमन का गवर्नर बना कर भेजा तो उनसे पूछा: किस तरह फ़ैसला करोगे? उन्होंने जवाब दिया कि अल्लाह की किताब में देखुंगा। आपने फिर पूछा कि अगर अल्लाह की किताब में न मिल तो?, उन्होंने जवाब दिया: अल्लाह के पैगम्बर की सुन्नत में देखुंगा। आपने पूछा अगर वहां भी न मिले तो?, उन्होंने जवाब दिया "अज्जहिदु राई, ला आलू" (मैं पूरी कोशिश करके अपनी राय बनाउंगा और इसमें कोई कसर नहीं छोडुंगा)। (मुसद्द अहमद 21502)

'अज्जहिदु राई' के यही शब्द इस शब्दावली का स्रोत हैं। सिद्धांतवादी आलिमों ने इसको हमेशा इन्ही सीमाओं में इस्तेमाल किया है जो हदीस से निर्धारित होती हैं। यानी इज्तेहाद केवल उन मामलों में ही किया जाएगा जिनके बारे में कुरआन व सुन्नत खामोश हैं। जो मामले कुरआन व सुन्नत में साफ़ तरीके से बयान हुए हैं उनसे इसका कोई सम्बंध नहीं है। इसकी वजह यह है कि कुरआन व सुन्नत की साफ़ बातें गौर करने के लिए हैं इज्तेहाद करने के लिए नहीं है। आलिम लोग उनका मंशा समझने के लिए बार बार उन पर गौर कर सकते हैं और उनके मतलब को समझने में उनमें मतभेद हो सकता है मगर उनके किसी निर्देश या निर्णय को अपने इज्तेहाद से बदल नहीं सकते न निरस्त कर सकते हैं।

इज्तेहाद का दायरा यही है। हज़रत मआज़ बिन जबल के साथ अल्लाह के रसूल सल्ल. की इस बातचीत की रिवायत अगर सही है तो इसमें अल्लाह के रसूल ने यही हक़ीक़त स्पष्ट की है। आपने यही पूछा कि अगर कुरआन में न मिले! अगर सुन्नत में न मिले! कुरआन व सुन्नत में अगर कोई चीज़ मिल जाती है तो मुसलमान उससे विचलित नहीं हो सकते। मुसलमान के ईमान का तक्राज़ा है कि बेचून व चरा कुरआन के सामने अपना सर झुका दे। इस्लाम का अर्थ ही यह है कि अल्लाह व रसूल के आगे आत्म समर्पण कर दिया जाए। राशिद ख़लीफ़ाओं के कुछ आदेशों को समझने में आज के कुछ बड़े चिंतकों से चूक हुई है। हक़ीक़त यह है कि उनमें से कोई यह सोच भी नहीं सकता था कि खुदा के किसी हुक्म को बदलने या निरस्त करने का दुस्साहस करे। लोग जिसे बदलाव या स्थगित करना समझते हैं वह असिल में आदेश के

निहितार्थ होते हैं जिन्हें राशिद खलीफ़ाओं ने अपने अमल से स्पष्ट कर दिया है। इससे बदलाव या स्थगित कर दिए जाने का आधार बनाने के बजाए कुरआन व सुन्नत में चिंतन और उनकी शैलियों को समझने का सलीक़ा सीखना चाहिए।

अलबत्ता, इस दायरे के अन्दर इज्तेहाद हवा और पानी की तरह हर मुसलमान की ज़रूरत है। इसका दरवाज़ा कभी बन्द नहीं हो सकता और सच्चाई यह है कि कभी बन्द हुआ भी नहीं। कुछ लोगों की तरफ़ से इस पर ज़ोर दिए जाने के बावजूद कि यह चौथी सदी हिजरी के बाद बन्द हो चुका है, ऐसे आलिम, फ़क़ीह और विभिन्न उलूम के माहिर (विशेषज्ञ) हमेशा पैदा होते रहे हैं जिन्होंने हर ज़माने में इज्तेहाद किया है और इस समय भी कर रहे हैं। अल्लाह ने इंसान को इल्म व अक़ल दी है। यह नेअमत इंसान को इसी लिए दी गयी है कि अपने मामलों का फ़ैसला करने के लिए उसे स्तेमाल करे। ये मामले अनिर्धारित भी हैं और तरह तरह के भी। इंसान अंधा और बहरा नहीं है कि हर जगह सीधे आसमान से आने वाले मार्गदर्शन का ज़रूरत मंद हो। अल्लाह ने अपनी शरीअत केवल उन मामलों के लिए उतारी है जिनमें खुद इल्म व अक़ल को मार्गदर्शन की ज़रूरत है। उसके निर्देश भी इसी लिए बहुत सीमित हैं। चुनांचि ज़रूरी है कि इज्तिहाद किया जाए। तरक़्की का राज़ इसी इज्तेहाद में छुपा है। इसके बग़ैर जीवन आगे नहीं बढ़ सकता। मुसलमानों के पतन का एक बड़ा कारण यह भी है कि वो सामूहिक रूप से भौतिक ज्ञान, वैज्ञानिक खोज और सामाजिक अध्ययन में इज्तेहाद की याग्यता खो बैठे हैं।

मैं यह समझता हूँ कि इज्तेहाद के लिए कोई शर्त नहीं है। लोगों को इज्तेहाद करना चाहिए, उनमें से एक ग़लती करेगा तो दूसरे की आलोचनात्मक समीक्षा उसे ठीक कर देगी। इंसान इसी से आगे बढ़ता है और ऊंचे दर्जे के मुज्ताहिदीन (इज्तेहाद करने वाले) भी इसी अभ्यास के नतीजे में पैदा होते हैं। इसमें शक नहीं कि तक़लीद (अनुसरण) के सिद्धांत को मान लिया जाए तो वो सारी शर्तें मानना ज़रूरी हो जाती हैं जो इज्तेहाद के लिए बयान की जाती हैं, इसलिए कि इस स्थिति में असिल चीज़ इज्तेहाद की प्रक्रिया और उसकी विधि पर नज़र नहीं होगी बल्कि मुज्ताहिद का व्यक्तित्व होगा जिसे अनुसरण का पात्र माना जाएगा। लेकिन सहाबा और ताबिईन (सहाबियों के शिष्य) की तरह आम व ख़ास सब लोग अपने नतीजों का आधार तर्क पर रखें तो मुज्ताहिद को नहीं बल्कि इज्तेहाद को देखा जाएगा कि वह किस हद तक इल्म व अक़ल की कसौटी पर पूरा उतरता है। इस स्थिति में मुसलमान तो एक तरफ़, अगर कोई ग़ैर मुस्लिम भी किसी समस्या का उचित समाधान पेश कर देता है तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए, इसे इस हदीस के अन्तर्गत स्वीकार करना चाहिए कि “हिकमत मोमिन की खोई हुई पूंजी है जहां उसे पाए तो उसे लेने का हक़ मोमिन को ही ज़्यादा है” (तिरमिज़ी 2687)।

यह एक सच्चाई है कि आज के युग में राजनीति, अर्थ व्यवस्था, प्रशासन और नागरिकता आदि के नियमों अधिकतर ग़ैर मुस्लिमों ने विकसित किया है और मुसलमान आम तौर से उन्हें अपनाए हुए हैं। इसका एक स्पष्ट उदाहरण लोकतंत्र, लोकतांत्रिक मूल्य और उनके तहत स्थापित होने वाली संस्थाओं के नियम हैं। मैं यह मानता हूँ कि लोकतंत्र का सिद्धांत कुरआन ने दिया था, मगर मुसलमान इसके लिए कोई व्यवस्था नहीं बना सके। यह व्यवस्था ग़ैर मुस्लिमों ने बनाई है। इसके बावजूद देख लीजिए कि परम्परावादी आलिम, फ़क़ीह और अधिकतर धार्मिक संगठन न केवल इस व्यवस्था

मानते हैं बल्कि उसको अपनाए हुए हैं। कुरआन व सुन्नत जिन मामलों पर खामोश हैं उनमें सही रवैया यही है कि उसे
इंसानों के सामूहिक अक्रली प्रयासों से हल किया जाए।

2011